JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

स्वाधीनता आंदोलन में आदिवासियों की भूमिका

BLASIYUS EKKA

Assistant professor

Govt Naveen girls college Balrampur Chhattisgarh

सारांश - आदिवासी प्रकृति के पूजक और उसके संरक्षक हैं इन्हें जंगल पेड़ पौधों और पशुओं से बेहद प्रेम है इनका मुख्य हथियार तीर धनुष है ये शिकार में माहिर होते हैं सादा जीवन शैली व पारंपरिक भोजन सहज शालीन और शर्मिला स्वाभाव इनकी पहचान होती है । अतिथियों के स्वागत सत्कार को लेकर ये आतुर रहते हैं। कुनबे में रहना और उसका ख्याल रखना इनकी खासियत है। जड़ी बूटी और औषधियों का ज्ञान इन्हें बहुत अच्छा से आता है। अपनी संस्कृति भूमि व अपनी भाषा से इन्हें बेहद प्रेम है पूर्वजों द्वारा स्थापित परंपरा का ये आज भी पालन करते हैं।

मुख्य शब्द - आदिवासी, आंदोलन, स्वतंत्रता ।

प्रस्तावना - स्वाधीनता आंदोलन में आदिवासियों की भूमिका समझने के लिए उसकी पृष्ठभूमि को समझना जरूरी है। यह सच है कि आदिवासियों द्वारा चलाए गए आंदोलन स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार स्थानीय स्तर पर ही लड़े गए, पूरे भारत की स्वतंत्रता के लिए आदिवासियों ने कभी अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध नहीं लड़े, इसका प्रमुख कारण है आदिवासी कई उप जातियों और समूहों में बटा हुआ था और आज भी बटा हुआ है। भारत में 428 जनजातियां अधिसूचित है जबकि इनकी वास्तविक संख्या 642 से भी अधिक है जनसंख्या की दृष्टि से एशिया में सबसे ज्यादा आदिवासी भारत में निवास करते हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का 8.6% आदिवासी जातियां हैं। यह 19 राज्य और 6 केंद्र शासित राज्यों में फैले हुए हैं। बंगाल के 24 परगना से लेकर गुजरात के जिले तक देश के 70% आदिवासी रहते हैं। पूर्वोत्तर के 7 राज्यों मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, असम, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड और त्रिपुरा में आदिवासियों का

बाहुल्य है, यही कारण है कि पूर्वोत्तर के समीपवर्ती प्रदेश बिहार और झारखंड जनजाति आंदोलन के प्रमुख केंद्र रहे हैं। आदिवासी पूर्वोत्तर के 7 राज्यों के अलावा झारखंड, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान में बसे हुए हैं। त्रिपुरा में 19 जनजातियां हैं जो ईसाई, बौद्ध और हिंदू धर्म को मानते हैं। मेघालय में 16 तरह की जनजातियां हैं और ईसाई धर्म को मानते हैं। छत्तीसगढ़ में 42 जनजातियां हैं जो ईसाई और हिंदू धर्म को मानते हैं। छत्तीसगढ़ के बिलासपुर संभाग में जेवरा गोंड के अलावा रतनपुरिया सरगुजिया ध्रुव मटकोडवा तथा राजगोंड में सगा समाज हैं फिर भी उनमें रोटी बेटी का व्यवहार नहीं है। (आदिवासी सत्ता अंक 2 मार्च 2016) इस तरह आदिवासी कई समूहों में बटे हुए हैं इसलिए अपनी स्वायत्तता की लड़ाई भी अलग-अलग लड़ी फिर भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को आधार आदिवासियों की इन्हीं आंदोलन ने दिया। भारत में राष्ट्रीय आंदोलन को खड़ा करने में आदिवासी आंदोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत के इतिहासकारों ने सन् 1857 की क्रांति को स्वाधीनता संग्राम का पहला आंदोलन बताया है लेकिन असल में 1857 से सैकड़ों वर्ष पूर्व आदिवासियों ने आजादी के आंदोलन का बिगुल फूंक दिया था। क्रांतिकारी कोश के लेखक श्रीकृष्ण सरल ने राष्ट्रीय आंदोलन का काल सन् 1757 से 1961 माना है। सन् 1757 में प्लासी का युद्ध हुआ था जिसमें बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को ईस्ट इंडिया कंपनी ने हराकर भारत में ब्रिटिश राज्य की नींव रखी थी। सन् 1961 में पुर्तगालियों से मुक्त करवाकर गोवा का विलय भारत में किया गया था स्वाधीनता आंदोलन का कालखंड यही माना जाना चाहिए। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से पहले ही जनजातियों एवं उनके नेता ब्रिटिश ताकतों के खिलाफ विद्रोह में उठ खड़े हुए थे। भारत भर में संथाल, कोल ,हो, पहाड़िया, मुंडा, उरांव, चेरो, लेपचा, भुटिया, और पूर्व में भुइयां जनजाति, खासी, नागा, अहोम, मीमारिया,अबोर,न्यिशी, जयंतियां,गारो, पूर्वोत्तर में मिजो,सिंघपो,कुकी और लुशाई और दक्षिण में पदयागर,कुरिच्या,बेदा, गोंड और ग्रेट अंडमानी मध्य भारत में हल्बा,कोल, मोरिया, कोई और डांग भील,मैल,नाइका,कोली, और पश्चिम में दुबला ने अंग्रेजों पर लगातार और क्रूर हमले किए।आदिवासियों के लिए आर्थिक स्वतंत्रता भी उतनी ही महत्वपूर्ण थी जितनी सामाजिक और राजनीतिक स्वतंत्रता। साहूकार आदिवासियों का जमकर शोषण कर रहे थे साहूकार से एक बार लिया हुआ कर्ज पीढ़ियों तक चुकता नहीं हो पाता था। अंततः साहूकार जमीदार की मदद से आदिवासियों की जमीन पर जबरन कब्जा कर लेते थे इसलिए आदिवासियों के लिए आर्थिक स्वतंत्रता जरूरी थी, यही कारण है कि आदिवासियों ने हर आंदोलन में पूर्ण स्वायत्तता की मांग की थी। अंग्रेजों ने भारतीय जनता पर सीधा शासन नहीं किया उन्होंने राजा, महाराजाओं, सामंतों और जमीदारों के

माध्यम से शासन चलाया। ब्रिटिश शासकों को कोई कानून भारतीय जनता पर लागू करवाना होता तो इन्हीं के मार्फत लागू करवाते थे। राजस्व वसूली भी राजा महाराजाओं और जमीदारों के माध्यम से ही करते थे इसलिए आदिवासियों की सीधी लड़ाई जमीदारों और सामंतों से होती थी।आदिवासी जब जमीदारों और राजा महाराजाओं के नियंत्रण से बाहर हो जाते थे तब वे अंग्रेजी हुकूमत से मदद मांगते थे। उनकी मदद के लिए अंग्रेज अपनी सेना भेजते थे ऐसी स्थिति में आदिवासियों को अंग्रेजी सेना और जमीदारों से सीधा मुकाबला करना पड़ता था। आदिवासी, साहूकारों के भी खिलाफ थे इसलिए साहूकार भी जमीदारों का साथ देते थे ऐसी स्थिति में आदिवासियों को स्वायत्तता और स्वतंत्रता के हर आंदोलन में अंग्रेजी हुकूमत के साथ-साथ सामंतों और साहूकारों से भी संघर्ष करना पड़ता था। आदिवासियों का आंदोलन ज्यादा व्यापक था। भारत में सबसे पहले आदिवासियों ने स्वतंत्रता आंदोलन सन 1785 में संथाल परगना में प्रारंभ किया। दो आदिवासी वीरों तिलका और माझी ने आंदोलन का नेतृत्व किया, यह आंदोलन सन 1790 तक चला इसे दामिन विद्रोह कहते हैं। अपने लोगों और भूमि की रक्षा के लिए दृढ़ संकल्प तिलका, आदिवासियों को धनुष और तीर के उपयोग में प्रशिक्षित एक सेना में संगठित किया। 1770 में संथाल क्षेत्र में भयंकर अकाल पड़ा इसके साथ उनका "संथाल हूल" (संथालों का विद्रोह) शुरू हुआ उन्होंने अंग्रेजों और उनके चापलूस सहयोगियों पर हमले जारी रखे। सन् 1771 से 1784 तक तिलका ने ब्रिटिश सत्ता के सामने आत्मसमर्पण नहीं किया। तिलका और मांझी की गतिविधियों से अंग्रेज सेना परेशान हो चुकी थी उन्हें पकड़ने के लिए सेना भेजी गई तिलका को इसकी भनक लग चुकी थी। यह देखने के लिए कि अंग्रेज सेना कहां तक पहुंची है तिल का ताड़ के ऊंचे पेड़ पर चढ़ गया। संयोग से अंग्रेजी सेना पास की झाड़ियों में छुपी हुई थी, उसका नेतृत्व मि.क्लीवलैंड कर रहे थे उसने तिलका को पेड़ पर चढ़ते हुए देख लिया था वह घोड़े पर सवार होकर पेड़ के पास पहुंचा। सेना ने भी पेड़ को चारों तरफ से घेर लिया था। क्लीवलैंड ने तिलका को ललकारा। तिलका ने क्लीवलैंड पर एक तीर चलाया जो उसकी छाती में जाकर लगा। क्लीवलैंड नीचे गिर गया और झटपटाने लगा सेना उसे संभालने के लिए भागी। इस बीच तिलका फुर्ती से पेड़ से नीचे उतरा और जंगल में गायब हो गया। अंत में अंग्रेज सेना तिलका को गिरफ्तार करने में सफल हो गई तिलका को अंग्रेजों ने पेड़ से लटका कर फांसी दे दी। अपने प्रदेश की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ते हुए तिलका शहीद हो गया। शहीद वीर बुधु भगत ने 1832 में न केवल छोटानागपुर क्षेत्र को ब्रिटिश शासन से मुक्त कराने के लिए संघर्ष किया बल्कि ब्रिटिश अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए लोगों को एकजुट किया और गुरिल्ला युद्ध में उनका नेतृत्व किया। यह 1832 का लार्का विद्रोह के नाम से जाना जाता है। तिरोत सिंह जिसे यू तिरोत सिंह श्याम के नाम

से भी जाना जाता है 19वीं सदी की शुरुआत की खासी प्रमुख थे। उन्होंने सिम्लिह कबीले से अपने वंश को आकर्षित किया और युद्ध की घोषणा की और खासी पहाड़ियों पर नियंत्रण करने के प्रयासों के लिए अंग्रेजो के खिलाफ लड़ाई लड़ी। एंग्लो खासी युद्ध में खासियों ने गुरिल्ला गतिविधि का सहारा लिया जो लगभग 4 वर्षों तक चला। तिरोत सिंह को अंततः जनवरी 1833 में अंग्रेजों ने पकड़ लिया और ढाका भेज दिया। 1833 का खासी विद्रोह मेघालय में हुआ था। सन् 1850 से 1880 तक झारखंड क्षेत्र में तेलंगा खारिया विद्रोह हुआ था। खारिया जनजाति से ताल्लुक रखने वाले तेलंगा खारिया ने छोटानागपुर क्षेत्र में आदिवासियों को ब्रिटिश अत्याचारों और अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया। उनके नेतृत्व में 13 ज्यूरी पंचायतों का गठन किया गया और उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ गोरिल्ला युद्ध में लगभग 1500 प्रशिक्षित पुरुषों की एक सेना का गठन किया। 1855 में संथाल भाइयों सिध्दू और कान्हू मुर्मू के नेतृत्व में भागनाडीही गांव में एकत्रित हुए और उन्होंने खुद को ब्रिटिश शासन से मुक्त घोषित कर दिया। प्रारंभ में क्षेत्र में ब्रिटिश शासन पंगु हो गया था और देसी एजेंट मारे गए थे। अक्टूबर 1857 में लातेहार जिले की नीलांबर और पितांबर भाइयों ने क्षेत्र में ब्रिटिश एजेंटों के खिलाफ हमले में लगभग 500 आदिवासियों का नेतृत्व किया। पलामू किले पर विद्रोही आदिवासियों का कब्जा था बाद में मजबूत ब्रिटिश सेना ने विद्रोह को दबा दिया। दोनों भाइयों को गिरफ्तार कर लिया और उन्हें लेस्लीगंज में फांसी दे दी। 1857 संबलपुर का विद्रोह के नायक सुरेंद्र साय का जन्म वर्ष 1809 में लगभग 35 किलोमीटर दूर स्थित राजपुर खिंडा में हुआ था। संबलपुर में 1827 में महाराजा साईं की मृत्यु के बाद संबलपुर के सिंहासन के बाद सुरेंद्र साय ने अपनी भाषा और सांस्कृतिक विकास को प्रोत्साहित करके अंग्रेजो के खिलाफ लड़ाई में आदिवासी लोगों की मदद की। वह महान सैन्य प्रतिभा वाले व्यक्ति थे उन्होंने संबलपुर में अंग्रेजों के सैन्य प्रवाह की जांच के लिए दर्रों की रखवाली की 1857 के विद्रोह के दौरान हजारीबाग जेल को तोड़ दिया गया और वीर सुरेंद्र साय सहित कैदियों को मुक्त कर दिया गया था। संबलपुर का 1857 का विद्रोह अनिवार्य रूप से एक आदिवासी विद्रोह था। कोया विद्रोह जमीदारों के खिलाफ शुरू हुआ जिन्होंने वर्ष 1862 में ब्रिटिश शासकों से लगान एकत्रित करने की एक श्रृंखला बनाई थी। अंग्रेजों ने आदिवासियों को ताड़ी के पेड़ से उनकी पारंपरिक पेय निकालने पर प्रतिबंध लगा दिया था। व्यापारियों ने वहां की स्थिति का लाभ उठाते हुए आदिवासियों को ऋण देकर उनकी उपज और मवेशियों को जप्त कर लिया। आदिवासियों ने 1879 में थम्मन डोरा के नेतृत्व में अंग्रेज अधिकारियों पर हमला किया । सन् 1922 -1924 में यह आंदोलन अल्लूरी सीताराम राजू के नेतृत्व में गांधी जी द्वारा शुरू किए गए असहयोग और सविनय अवज्ञा आंदोलन के साथ तालमेल बैठाया। सन् 1899-1900

के भीषण अकाल ने राजस्थान के आदिवासियों को असमान रूप से प्रभावित किया। इस त्रासदी से एक सामाजिक सुधार आंदोलन का उदय हुआ, इसका उद्देश्य हाशिए पर पड़े लोगों की भलाई करना था। गोविंद गुरु के नेतृत्व में भीलों के सामने आने वाली चुनौतियों का समाधान करने के लिए भगत आंदोलन शुरू किया गया था। सन् 1913 में गुरु अपने अनुयायियों के साथ मानगढ़ पहुंचे अफवाह फैल गई कि वह रियासतों के खिलाफ विद्रोह करने की योजना बना रहे हैं। अंग्रेजों और रियासतों की संयुक्त सेना ने भीड़ पर गोलियां और तोपों से बमबारी की जिसमें 1000 से अधिक लोग मारे गए इसे मगध नरसंहार के नाम से जाना जाने लगा। 1891 में एंग्लो मणिपुरी युद्ध या खोंगजोम युद्ध छूट गया। तामू वर्तमान में मणिपुर और म्यांमार की सीमा पर ब्रिटिश सेना का विरोध करने का प्रयास करते हुए 700 मणिपुरी सैनिकों को एक बहादुर सैनिक मेजर जनरल पाओना बृजवासी के नेतृत्व में थौबल भेजा गया। मणिपुर राज्य की इस लड़ाई को इतिहासकार भारतीय इतिहास में अंग्रेजो के खिलाफ सबसे भीषण लड़ाई के रुकने वाली थी किया है। इसलिए मणिपुर राज्य में हर साल 23 अप्रैल को खोंगजोम दिवस मनाता है।झारखंड का मुंडा विद्रोह सन् 1899 में मुंडा के नौजवान बिरसा ने अपने समाज को त्रस्त करने वाली बुराइयों के बारे में सोचना शुरू किया और अपने लोगों को भी शासन से मुक्त करके उन्हें दूर करने का फैसला किया। उन्होंने मुंडाओं को नेतृत्व धर्म और सम्मान और स्वतंत्रता की मांग करने वाली जीवन संहिता प्रदान की। सन् 1894 में उन्होंने चाईबासा की शिकायतों के निवारण के लिए मुंड़ाओं का नेतृत्व किया और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उन्होंने 2 साल का कठोर कारावास बिताया। उन्होंने लोगों की सेवा करना विशेषकर जरूरतमंदों और बीमारों की सेवा करना जारी रखा इसलिए उन्हें बिरसा भगवान के रूप में पूजा जाता था। बिरसा, जीवन भर अंग्रेजो के खिलाफ संघर्ष करते रहे। भीषण मुठभेड़ के बाद 3 फरवरी 1900 को चक्रधरपुर के जंगल में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और कैद में ही उसकी मृत्यु हो गई। वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर के एक छोटे से गांव में पले बढ़े गुंडाधुर ने आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन की रक्षा के लिए अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ 10 फरवरी 1910 में भूमकाल आंदोलन की शुरुआत की थी। लगातार बस्तर वासियों का शोषण होता देख अंग्रेजो के खिलाफ आवाज उठाने का बीड़ा गुंडाधुर ने उठाया। भूमकाल आंदोलन में लाल मिर्च क्रांतिकारियों का संदेशवाहक कहलाती थी जैसे 1857 की क्रांति के समय रोटी और कमल। गुंडाधुर ने अंग्रेजों को इस कदर परेशान किया था कि कुछ समय के लिए अंग्रेजों को गुफा में छिपना पड़ा था। बस्तर के नेतनार में रहने वाले गुंडाधुर को उस समय लोग बागा ध्रुवा के नाम से जानते थे। चूंकि बाहरी दासता के खिलाफ संघर्ष बस्तर की प्रकृति रही है। बस्तर की संपदा लूट रहे अंग्रेजो के खिलाफ खड़े हुए भूमकाल आंदोलन ने पूरे ब्रिटिश सत्ता

को हिलाकर रख दिया। इस आंदोलन से जुड़े कई लोगों को फांसी पर लटका दिया गया जिसका गवाह आज भी जगदलपुर के गोल बाजार चौक पर स्थित इमली का पेड़ है जहां पर इस आंदोलन से जुड़े लोगों को मौत की सजा दे दी गई थी। गुमला जिले के जात्रा भगत जिन्हें जात्रा उरांव के नाम से भी जाना जाता है ने स्थानीय जमीदारों द्वारा किए जा रहे उत्पीड़न के खिलाफ लड़ने के लिए उरांव आदिवासियों को संगठित किया। सन् 1921 में आदिवासियों ने असहयोग आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। उन्हीं के अनुनय पर तत्कालीन बिहार में भूमिहीन आदिवासियों के लिए भगत कृषि भूमि पुनर्स्थापन नियम पारित किया गया। उनके अनुयायियों को टाना भगत के नाम से जाने जाते थे इसलिए इस आंदोलन को टाना भगत आंदोलन नाम दिया गया। आसाम की चाय बागान में अफीम विरोधी अभियान के प्रमुख सदस्यों में से एक मालती मैम थी। 1921 में दारंग जिले के लालमति में शराबबंदी अभियान में कांग्रेश के स्वयंसेवकों का समर्थन करने के लिए सरकारी समर्थकों द्वारा उनकी हत्या कर दी गई थी। मणिपुर के एक रोंगमेई नागा नेता उत्तर पूर्व भारत की प्रमुख स्वदेशी नागा जनजातियों में से एक हाइपो जादोनांग एक आध्यात्मिक और राजनीतिक नेता थे जिन्होंने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के चंगुल से आजादी के लिए लड़ाई लड़ी थी। उन्होंने एक सेना रिफेन की स्थापना शुरू की जिसमें पुरुष और महिलाएं शामिल थी जो सैन्य रणनीति हथियार और टोही मिशनों में अच्छी तरह प्रशिक्षित थी। इसके अलावा रंगरूटों ने खेती जैसे नागरिक मामलों में सहायता की। सन् 1931 में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और ब्रिटिश शासकों ने उन्हें फांसी दे दी। उड़ीसा की भूमिया जनजाति से संबंधित लक्ष्मण नाइक को कोरापुट और उसके आसपास के क्षेत्र जैसे मलकानागिरी और तेंतुलीपाडा के लोगों द्वारा आदिवासी नेता के रूप में स्वीकार किया गया था। आदिवासी लोगों ने खुद को राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए समर्पित कर दिया उन्होंने सड़कों के निर्माण पुल के निर्माण और स्कूलों की स्थापना जैसी विकास कार्यों के लिए आदिवासी लोगों को लामबंद किया गया। इन्होंने ग्रामीणों को टैक्स नहीं देने को कहा। सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान उन्हें माटिली का प्रतिनिधित्व करने के लिए नामित किया गया था। ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ अहिंसा को एक मुख्य हथियार के रूप में इस्तेमाल किया तथा शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ लड़ाई की अगुवाई की। आदिवासी लोग उन्हें मलकानगिरी के गांधी के नाम से जानते थे। इस क्षेत्र की बोंडा जनजातियों ने लक्ष्मण नाइक के नेतृत्व में मटीली पुलिस स्टेशन पर कब्जा कर लिया पुलिस ने गोलियां चलाई जिसमें लगभग 7 लोग मारे गए और कई घायल हो गए। 29 मार्च 1943 को भोर में लक्ष्मण नाइक वीरता पूर्वक बेरहामपुर जेल के पासी की ओर बड़े जहां उन्हें औपनिवेशिक शासकों द्वारा मृत्युदंड दिया गया था। इस आंदोलन को कोरापुट विद्रोह 1942 के नाम से जाना जाता है।

1857 का सिपाही विद्रोह भारतीय सैनिकों की गतिविधियों तक ही सीमित नहीं था यह आदिवासी इलाकों में भी फैल गया। ऐसे ही एक उदाहरण है आदिवासी जमीदार नारायण सिंह जिनके पूर्वज सारंगढ़ में रहने वाले गोंड आदिवासी समूह के थे। बाद में उन्होंने अपनी संबध्दता को गोंड जनजाति से बदल दिया तथा अपने को बिंझवार जनजाति के मानने लगे और रायपुर जिले के सोनाखान चले गए। उनके परदादा सोनाखान के दीवान थे और नारायण सिंह 35 साल की उम्र में पिता राम राय की मृत्यु के उपरांत जमीदार बने थे। अंग्रेजों ने उन्हें 1856 में एक व्यापारी के अनाज के भंडार को लूटने और अकाल के वर्ष में गरीबों में बांटने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया। 1856 में रायपुर में अन्य सैनिकों की मदद से वीर नारायण सिंह जेल से भाग निकले। वह सोनाखान पहुंचा और 500 आदमियों की एक सेना बनाई। स्मिथ के नेतृत्व में सोनाखान की सेना को कुचलने के लिए एक शक्तिशाली ब्रिटिश सेना भेजी गई। देवरी के जमीदार की मदद से वीर नारायण सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया और 10 दिसंबर 1857 को रायपुर छत्तीसगढ़ के जय स्तंभ चौक पर फांसी दे दी गई। इसी तरह स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में एक और नाम राजमोहिनी देवी जो गांधीवादी विचारधारा वाली एक समाज सेविका थी जिन्होंने बापू धर्म सभा आदिवासी मंडल की स्थापना की। यह संस्था गोड़वाना स्थित आदिवासियों के हित के लिए कार्य करती है। एक आदिवासी जाति मांझी में जन्मी थी। 1951 के अकाल के समय गांधीवादी विचारधारा व आदर्शों से प्रभावित होकर उन्होंने एक जन आंदोलन चलाया जिसे राजमोहिनी आंदोलन के नाम से जाना जाता है। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य आदिवासी महिलाओं की स्वतंत्रता व स्वायत्तता निश्चित करना था साथ ही अंधविश्वास और मदिरापान की समस्याओं का उन्मूलन था। धीरे-धीरे इस आंदोलन में80 हजार से भी ज्यादा लोग जुड़ गए। बाद में यह आंदोलन एक अशासकीय संस्थान के रूप में सामने आया। इस संस्थान के आश्रम न सिर्फ छत्तीसगढ़ बल्कि उत्तर प्रदेश और बिहार में भी है।

निष्कर्ष -जनजाति समाज अपनी आध्यात्मिक परंपराओं विशिष्ट संस्कृति और श्रेष्ठ जीवन मूल्यों के साथ सदैव से भारतीय सभ्यता और संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। जब-जब देश की सुरक्षा पर संकट आया, जनजाति समाज ने अपने शौर्य एवं पराक्रम से राष्ट्र की सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जब ब्रिटिश शासकों ने भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार करना प्रारंभ किया, तो उन्हें सबसे पहले और सशक्त संघर्ष एवं चुनौती जनजाति समाज तथा वनवासी अंचलों से करना पड़ा। जनजाति समाज ने कभी भी अंग्रेजों की दासता स्वीकार नहीं किया और समय-समय पर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह और संघर्ष किया।

चाहे तिलका मांझी के नेतृत्व में दामिन विद्रोह हो, वीर बुधु भगत का गुरिल्ला युद्ध, सिद्धू और कान्हू मुर्मू के नेतृत्व में संथाल विद्रोह, बिरसा मुंडा के नेतृत्व में विद्रोह, चाहे गुंडाधुर के नेतृत्व में भूमकाल आंदोलन, ताना भगत विद्रोह, वीर नारायण सिंह का विद्रोह, भीलों एवं नागाओं के विभिन्न आंदोलन हो, अंग्रेजों के विरुद्ध जनजाति समाज के संघर्ष और बलिदान की एक समृद्ध परंपरा रही है। संगठित आंदोलनों और विद्रोहों के अतिरिक्त जनजाति समाज द्वारा वैयक्तिक बलिदानों की भी एक लंबी श्रृंखला रही है। हजारों नाम तो ऐसे हैं जिनका संघर्ष एवं बलिदान इतिहास के पन्नों में दर्ज ही नहीं हो पाया।

संदर्भ –

1. वैश्वीकरण और आदिवासी समाज, समस्या एवं समाधान - आजाद प्रताप सिंह, राज पब्लिकेशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2018 पृष्ठ - 91

2. समग्र छत्तीसगढ़- डॉ. रमेंद्रनाथ मिश्र एवं डॉ. लक्ष्मीधर झा, छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रंथ अकादमी पृष्ठ -153

3. वही, पृष्ठ-155

4. वही, पृष्ठ -184

5. आदिवासी और हिंदी उपन्यास, अस्मिता और अस्तित्व का संघर्ष - गंगा सहाय मीणा, अनन्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण -2016, पृष्ठ -62

6.वही, पृष्ठ - 70

7. वही, पृष्ठ -71

8. वही, पृष्ठ -72

9.भारत के राष्ट्रीय एवं सामाजिक आंदोलन -डॉ.महेन्द्र कुमार, के.के.पब्लिकेशन,नई दिल्ली, पृष्ठ -41

10. भारत का सामाजिक आंदोलन - घनश्याम शाह,रावत पब्लिकेशन

11. विकास का समाजशास्त्र 1992 - श्यामाचरण दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

12.सामाजिक परिवर्तन एवं आंदोलन - डॉ.जी. के. अग्रवाल,एम. बी. डी. पब्लिकेशन हाउस आगरा

ब्लासियुस एक्का
सहायक प्राध्यापक हिंदी
शा नवीन कन्या महाविद्यालय
बलरामपुर छत्तीसगढ़